इष्टोपदेश की गाथा १०वीं चली। (अब) ११ **यहाँ पर शिष्य प्रश्न करता है कि स्त्री आदिकों में राग और शत्रुओं में द्वेष करनेवाला पुरुष, अपना क्या अहित-बिगाड़ करता है?** शिष्य का प्रश्न है कि अपने अतिरिक्त स्त्री आदि परपदार्थ में राग, प्रेम करे और जिसे एक के प्रति प्रेम है तो दूसरे के प्रति द्वेष होता ही है। समझ में आया? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। सम्यग्दृष्टि को ज्ञानस्वरूप का भान होता है, मैं ज्ञाता हूँ, मैं दृष्टा हूँ तो कोई पदार्थ उसे प्रेम करनेयोग्य या द्वेष करनेयोग्य जगत में पदार्थ है ही नहीं।

मुमुक्षु : राग करे तो द्वेष हो ही जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यदि एक के प्रति राग-प्रेम करे तो समझना कि दूसरे के प्रति उसे द्वेष है ही। समझ में आया? राग और द्वेष दोनों की जोड़ी, जोड़ी, जोड़ी है। अकेले नहीं। क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है।

आत्मा तो ज्ञानस्वरूप शुद्ध चिदानन्द आत्मा है। उसका भान हुआ कि मैं तो ज्ञातादृष्टा चैतन्य हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य पदार्थ जो अनन्त हैं, वे मेरे ज्ञान में ज्ञेय हैं, जाननेयोग्य हैं। ऐसे धर्मी जीव को, सम्यग्दृष्टि को, सत्यदृष्टिवन्त को अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव ज्ञान और आनन्दरूप है, ऐसी दृष्टि हुई है तो वह अपने अतिरिक्त अनन्त पदार्थों के दो भाग नहीं करता। एक इष्ट और एक अनिष्ट है, ऐसे भाग सम्यग्ज्ञानी नहीं करता।

मिथ्यादृष्टि अपना स्वरूप ज्ञान और शुद्ध है, ऐसा भान नहीं, ऐसे अज्ञानी प्राणी, जगत के सभी पदार्थ ज्ञान में ज्ञेय होने पर भी एक ठीक है, प्रेम करनेयोग्य है, एक अठीक है तो द्वेष करनेयोग्य है, ऐसे दो भाग मिथ्यादृष्टि करता है। यह बात कहते हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? हमारे तो यह पदार्थ हमारा देश, हमारा गाँव, हमारी जाति—ऐसा जिसे प्रेम है, उसे उससे विरुद्ध पदार्थ के प्रति द्वेष होता.. होता.. और होता ही है। आहा..हा..! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

कहते हैं, उसमें क्या बिगड़ गया? कोई स्त्री आदि प्रिय पदार्थ है, शरीर प्रिय है, उसमें प्रेम करना और दूसरे पदार्थ उनसे विरुद्ध है, अनुकूल नहीं पड़ते, उनमें द्वेष (करता है) उसमें क्या बिगड़ गया? **जिससे उनको (राग-द्वेषों को) अकरणीय-न करने लायक बतलाया जाता है?** शिष्य का प्रश्न है कि राग-द्वेष करनेयोग्य नहीं, ऐसा आप कहते हो तो उसका हेतु क्या है? उसका समाधान (करते हैं)।

राग-द्वेषद्वयी-दीर्घनेत्राऽऽकर्षण-कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।।११।।

थोड़ी सूक्ष्म, बारीक बात है। ऐसे राग-द्वेष, राग-द्वेष (करे), ऐसे नहीं। समझ में आया? कहते हैं, देखो! इसका अर्थ है न? **यह जीव अज्ञान से..** देखो! यहाँ से लिया है। है अर्थ.. अर्थ? यह जीव अज्ञान से, मिथ्यादृष्टि से। जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, (वैसा

जीव)। है ? कहाँ है ? यह तुरन्त ही बोलता है। **यह जीव अज्ञान से..** अर्थात् अपना स्वरूप ज्ञानमूर्ति जगत का ज्ञातादृष्टा है। अपने से भिन्न चीज़ अपने में प्रिय है या अप्रिय है, ऐसा है नहीं। ऐसा होने पर भी अज्ञानी **रागद्वेषरूपी दो लम्बी डोरियों..** समझे ? उसमें तो समुद्र मंथन का दृष्टान्त दिया है। मेरुपर्वत। मंथन किया था न ? अन्यमति में बात आती है न ? अन्यमति में। मेरु का मंथन किया था। लम्बी डोरी। मेरु पर्वत को जब (मंथन) करे, तब लम्बी डोरी चाहिए न ? इस संसार में अज्ञान से भटकने की राग-द्वेषरूपी दो लम्बी डोरियाँ।

खींचतानी से संसाररूपी समुद्र में बहुत काल तक घूमता रहता है... देखो! आचार्य जरा सूक्ष्म बात है, ऐसा कहते हैं कि **परिवर्तन करता रहता है।** क्या (कहते हैं) ? अपना स्वरूप शुद्ध ज्ञानस्वरूप को भूलकर, शरीर ठीक हो तो मुझे ठीक है; मेरे देश को ठीक हो तो मुझे ठीक है; मेरे परिवार को ठीक हो तो मुझे ठीक है—ऐसा अज्ञानी राग करता है। वह मिथ्यादृष्टि का राग यहाँ लिया है। समझ में आया ?

मेरा देश सुखी हो तो बस! समझ में आया ? साधु नाम धराकर उसे सम्प्रदाय का बहुत प्रेम न! ऐसा माने कि लक्ष्मी हो तो पाप होगा... परन्तु सम्प्रदाय का राग ? तो ऐसा जवाब दिया कि हमारे सम्प्रदाय के सब श्रावक सुखी हों तो मुझे ठीक है। एक सेठ को ऐसा जवाब देते थे। मैंने कहा, यह क्या ? यह क्या करता है ? समझ में आया ? हमारे सम्प्रदाय के श्रावक, श्राविका सब सुखी हों तो अच्छा। इसका अर्थ कि मिथ्यादृष्टि से जिन्हें अपना माना, वे कोई अपने हैं ही नहीं। श्रावक या श्राविका या सम्प्रदाय अपना है ही नहीं। ऐई!

मुमुक्षु : कब नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब नहीं क्या ?

मुमुक्षु : करुणावाले...

पूज्य गुरुदेवश्री : करुणावाला है, वह मिथ्यात्व है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसे ऐसा है कि मेरा परिवार, मेरी स्त्री आदि सब सुखी हों तो ठीक। ऐसा जो राग है, वह मिथ्यादृष्टि का महान मिथ्यात्व पाप की भूमिका में ऐसा राग होता है। समझ में आया ? क्योंकि इसने जगत की चीज़ जो ज्ञेयरूप से एकरूप है, आत्मा ज्ञातारूप से एकरूप

है, वस्तु ज्ञेयरूप से एकरूप है। उसमें दो भेद नहीं हैं। अज्ञानी ने अपने ज्ञानस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान छोड़ दिये और ज्ञेयरूप से समस्त चीज़ एक जाननेयोग्य है, उसमें दो भाग कर दिये। यह ठीक है, ऐसे उसमें प्रेम करना, वह तो उसका प्रेम हुआ, उससे विरुद्ध में द्वेष हुए बिना नहीं रहता। क्योंकि राग के पेट में द्वेष पड़ा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमारा परिवार नहीं परन्तु विश्व कुटुम्ब तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विश्व कहाँ कुटुम्ब है? विश्व तो भिन्न चीज़ है। वह धीरे-धीरे आनेवाला था परन्तु तुमने पहले ले लिया। विश्व क्या? अपने अतिरिक्त दूसरी विश्व चीज़ अपनी है? यह तो पहले कहा, अपना स्वरूप ज्ञान / ज्ञातादृष्टा को छोड़कर जो अनन्त चीज़ें हैं, वे ज्ञान में इष्ट-अनिष्ट करनेयोग्य हैं ही नहीं। सब चीज़ ज्ञान में जाननेयोग्य है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसका भी राग नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी का नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा का भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के प्रति प्रेम का विकल्प आता है, वह दूसरी बात, परन्तु वह प्रेम अच्छा है, ऐसा माननेवाला पर के प्रति द्वेष किये बिना रहेगा ही नहीं। राग नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा का स्वरूप ज्ञानस्वरूप, शुद्ध चिदानन्द है। उसकी जिसे दृष्टि नहीं, वह अपने अतिरिक्त दूसरे पदार्थों को किसी को प्रेम करता है तो किसी के प्रति द्वेष किये बिना रहेगा ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : बिगाड़ होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बिगाड़ होता है अज्ञान का, राग-द्वेष का - ऐसा कहते हैं। अज्ञानी को ऐसे राग-द्वेष करने से स्वयं के चैतन्य का खून होता है। क्या कहते हैं? हिंसा होती है।

मुमुक्षु : किसकी?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं की; दूसरे की कौन कर सकता है? ऐई! धर्मचन्दजी! आहा..हा..! देखो।

अज्ञान से रागद्वेषरूपी दो लम्बी डोरियों.. एक के प्रति प्रेम करता है तो दूसरे के प्रति द्वेष आये बिना रहेगा नहीं। अपने अतिरिक्त विश्व के प्रति प्रेम करे तो विश्व के प्रति कोई प्राणी प्रेम नहीं करे तो उसके प्रति द्वेष आये बिना रहेगा नहीं। समझ में आया? यह विश्व के प्रति प्रेम नहीं करता। अपने सर्व प्राणी समान हैं। समान का अर्थ क्या? समझ में आया? समान का अर्थ क्या? तू ज्ञान है, वह सब ज्ञेय है बस! ऐसे समान है। अपने अतिरिक्त दूसरी चीज़ प्रेम करनेयोग्य है तो प्रेम माना, तो मिथ्यादृष्टि जीव उससे विरुद्ध कोई प्राणी सर्व के प्रति प्रेम नहीं करे तो उसके प्रति द्वेष किये बिना रहेगा नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आहा..हा..!

यह जीव मुझे प्रेम से रक्षा करनेयोग्य है, ऐसी जिसे बुद्धि हुई, ऐसी मिथ्यादृष्टि की बुद्धि है। सुनो! जरा सूक्ष्म बात है। यह जीव मेरा प्रेमी है और प्रेम से मेरा अंग है और मेरी रक्षा करनेयोग्य है, ऐसा हुआ तो वह राग में, मिथ्यादृष्टि के राग में अन्दर द्वेष शक्ति पड़ी ही है। समझ में आया? जब इससे प्रतिकूल दूसरा दुश्मन होगा, उससे विरुद्ध (होगा), उसके प्रति द्वेष हुए बिना रहेगा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत गहरा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गहरे की बात करते हैं। यह तो बात करते हैं, अज्ञानी के राग-द्वेष की बात करते हैं। ज्ञानी को राग-द्वेष है ही नहीं। ज्ञानी को जो थोड़े रागादि होते हैं, उन्हें ज्ञेयरूप से जानता है। राग का राग नहीं, द्वेष का द्वेष नहीं। रागादि थोड़े विकल्प होते हैं, उन्हें सम्यग्दृष्टि जानता है कि है, इतना। उसमें ठीक-अठीक कुछ नहीं है। समझ में आया? धर्मी जीव को जरा शुभराग आता है, उसे जानता है; अशुभ आता है, उसे जानता है। शुभराग ठीक और अशुभराग अठीक, यह मिथ्यादृष्टि मानता है। आहा..हा..! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द ज्ञानस्वरूपी प्रभु को दूसरी कोई चीज़ प्रेम करनेयोग्य जगत की कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया? प्रेम करनेयोग्य यदि किसी पदार्थ को माना तो दूसरे उसके विरुद्ध के प्रति द्वेष किये बिना नहीं रहेगा। राग-द्वेष करना, वह आत्मा का स्वभाव है ही नहीं, तथापि यह राग-द्वेष करता है, वह मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष का कर्ता होकर

नये कर्म बाँधता है और चौरासी में भटकता है। यह बात जरा करते हैं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। ऐसे के ऐसे राग करना नहीं, राग करना नहीं - ऐसा नहीं। धर्मचन्दजी! जगत के दो भाग कर दे कि यह मेरा देश। उसका प्रेम है तो उससे विरुद्ध देश में द्वेष हुए बिना रहेगा नहीं। समझ में आया? वह मूढ़ प्राणी है, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : तब तो बहुत लोग मूढ़ हो जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया मूढ़ है। पागल के अस्पताल में सब पागल ही होते हैं। पागल के अस्पताल में कोई चतुर होता है? समझ में आया? डॉक्टर चतुर हो तो भिन्न पड़ जायेगा। अस्पताल और मैं भिन्न हैं, मैं तो काम करनेवाला हूँ। समझ में आया? ये मेरे हैं, ऐसा नहीं मानता। यह पागल मेरा और थोड़ा पागल है तो मेरा नहीं, (ऐसा नहीं मानता)। कहते हैं कि पागल को सयाना करना किस प्रकार? कि ज्ञानस्वरूपी हूँ, ऐसा निश्चय करो और तुझे कोई पदार्थ जगत में प्रेम और द्वेष करनेयोग्य नहीं है। यह पागल में से सयाना करने की रीति है। डाह्या कहते हैं न? क्या कहते हैं? होशियार।

त्यागी नाम धराकर, साधु, श्रावक नाम धराकर यदि उसे ऐसा आवे कि यह शरीर ठीक हो तो मुझे धर्म ठीक हो। ऐसा मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहता है। राग-द्वेष, राग-द्वेष, ऐसा नहीं। आत्मा है। वह शरीर है तो शरीर निरोग होगा तो मुझसे दया पलेगी, ऐसी जिसकी मान्यता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, मिथ्यादृष्टि का राग है। कौन पर की दया पाले? क्या है? वह अन्दर है। शक्ति—व्यक्ति शब्द पड़ा है न? शक्ति-व्यक्ति का अर्थ यह है। राग करता है तो शक्तिरूप से द्वेष है ही। द्वेष करता है तो शक्तिरूप से राग है ही। व्यक्तिरूप से भले राग दिखायी दे। अन्दर एक के प्रति प्रेम (दिखायी दे कि) आहा..हा..! गजब प्रेम है। उसकी शक्ति में द्वेष पड़ा ही है। अन्दर लिखा है। समझ में आया? आहा..हा..! खबर नहीं (कि) क्या राग-द्वेष किस प्रकार से कैसे होते हैं।

ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि धर्मी को तो वास्तव में राग-द्वेष होते ही नहीं। आहा..हा..! अपनी थोड़ी कमजोरी से धर्मी को जो रागादि होते हैं, वह राग का राग नहीं परन्तु राग का ज्ञान करते हैं। समझ में आया? और अज्ञानी को जो मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है, उसे कोई भी एक प्राणी दया पालने योग्य है, मुझे यह जीव रक्षा करनेयोग्य है—ऐसा राग है, वह मिथ्यादृष्टि

का राग है क्योंकि इसमें राग हुआ तो दूसरे के प्रति द्वेष हुए बिना रहेगा ही नहीं। आहा..हा..! बसन्तलालजी! आहा..हा..!

जीव अज्ञान से रागद्वेषरूपी दो लम्बी डोरियों.. देखो! लम्बी अर्थात् अनन्तानुबन्धी के राग-द्वेष की यहाँ बात है। समझ में आया? आहा..हा..! उसमें तो मेरुपर्वत का दृष्टान्त दिया है, परन्तु इसमें टीका में नहीं। अनादि लम्बी डोरी। **खींचतानी से..** एक ओर राग—मुझे यह प्राणी रक्षा करनेयोग्य है, यह देश मेरा है, यह शरीर मेरा है, यह स्त्री मेरी है—ऐसा प्रेम है तो उसमें द्वेष का भाव आये बिना रहेगा नहीं। ऐसी खींचातानी से, इन दो डोरियों की खींचातानी से राग-द्वेषरूपी दो डोरियों की (खींचातानी से) **संसाररूपी समुद्र में..** संसाररूपी समुद्र में। **बहुत काल तक घूमता रहता है..** चौरासी के अवतार में भटकेगा। **परिवर्तन करता रहता है।** समझ में आया? आहा..हा..! देखो!

विशदार्थ – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पंच परावर्तनरूप संसार.. यह भटकने का संसार। विशद अर्थ है न? विशदार्थ। विशद अर्थ किया है। विशद। इस जगत में आत्मा के अतिरिक्त अनन्त रजकण हैं, उनके सम्बन्ध में भटकना, वह द्रव्यसंसार -परावर्तन है। आत्मा का चौदह ब्रह्माण्ड में प्रत्येक क्षेत्र में जन्म लेना और मरण होना, वह क्षेत्रपरावर्तन है। कालपरावर्तन—प्रत्येक समय में अनन्त बार उपजना और मरना, वह कालपरिवर्तन है। भव—नरक, मनुष्य, पशु, स्वर्ग में अनेक भव करना, वह भवपरावर्तन है। भाव-शुभ और अशुभभाव, दया, दान, व्रत, परिणाम वह शुभ (भाव); हिंसा, झूठ, वह अशुभ (भाव)। उनमें भटकना, वे मेरे हैं, ऐसा मानकर भटकना, वह भावपरिवर्तन संसार है।

मुमुक्षु : स्त्री-पुत्रादि संसार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार-फंसार नहीं। स्त्री-पुत्र संसार है? संसार इसकी पर्याय में अज्ञान और राग-द्वेष (होते हैं), वह संसार है। स्त्री-पुत्र संसार होवे तो क्या हो? मृत्यु काल में स्त्री-पुत्र तो यहीं रहेंगे। यदि वे संसार हों तो संसार यहाँ पड़ा रहेगा। चला जायेगा तो इसका मोक्ष हो जायेगा। संसार का अभाव हो गया तो मोक्ष हो जायेगा। शरीर, संसार हो, स्त्री, कुटुम्ब (संसार) हो, पैसा संसार हो तो उसका अर्थ ऐसा हुआ कि जहाँ देह छूटा, वहाँ संसार छूट गया। यह सब छूट गया, संसार छूटा तो मोक्ष हो गया।

मुमुक्षु : यह संसार हो, तब तो अच्छा न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह संसार है ही नहीं। यह बात ही मिथ्या है। यहाँ अच्छे-बुरे की बात ही नहीं है। यह संसार है ही नहीं। संसार (तो) अपने ज्ञानस्वरूप की श्रद्धा छोड़कर, मैं पर का कर सकूँ, पर में प्रेम और पर में द्वेष—ऐसा मिथ्यात्वसहित का भाव, वह मिथ्यादृष्टि का भाव ही संसार है। आहा..हा..!

'संसरणइति संसारः' संसार की यह व्याख्या है। अपना ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द सिद्ध समान स्वरूप को भूलकर संसरण (अर्थात्) च्युत हो जाना, हट जाना और राग-द्वेष में प्रीति करना और राग-द्वेष ठीक हैं, ऐसा मानना, वही संसार और परिभ्रमण का मूल है। यह तो देह छूटने पर वे भाव लेकर चला जाता है और चीज़ तो पड़ी रहती है। वह चीज़ संसार नहीं है। समझ में आया? आहा..हा..!

पंच परावर्तनरूप संसार जिसे दुःख का कारण.. देखो! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव। भाव अर्थात् पुण्य-पाप भाव, शुभ और अशुभभाव, दोनों संसार हैं। आहा..हा..! यह पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ संसारभाव है। दया, दान, व्रत परिणाम शुभ है। हिंसा, झूठ (अशुभभाव है)। दोनों संसार हैं। देखो! भाव में क्या आया? आहा..हा..! समझ में आया?

द्रव्य अर्थात् चीज़ों का सम्बन्ध; क्षेत्र अर्थात् एक-एक जगह में अनन्त बार जन्म-मरण; काल में-समय-समय में (जन्म-मरण); भव में गति में (अर्थात्) नारक, देव (मनुष्य, तिर्यंच) में और भाव में शुभाशुभभाव में। **पंच परावर्तनरूप..** इन पाँच में बारम्बार परावर्तन करके चार गति में भटकता है। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : कर्म से नहीं भटकता?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म-फर्म की बात भी कहाँ है? कर्म कहाँ भटकाते हैं? वे तो जड़ हैं, ज्ञेय हैं, ज्ञान में ज्ञेय हैं। ज्ञान में कर्म मुझे नुकसान करेंगे, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहा..हा..! वे तो परद्रव्य हैं। परद्रव्य में द्वेष करे तो दूसरे में राग है ही। मिथ्यात्व में राग-द्वेष दोनों शक्ति पड़ी है। समझ में आया?

पंच परावर्तनरूप संसार.. इसमें भाव जो है, वह भावसंसार है। शुभ-अशुभभाव

/ विकल्प उठना, इसकी दया पालन करूँ, इसे मारूँ, इसकी रक्षा करूँ, इसकी सम्हाल करूँ ऐसा जो भाव का उत्थान होता है, अन्दर में से वृत्ति उठती है, शुभ या अशुभ, दोनों (वृत्तियाँ) संसार परिवर्तन है। वह आत्मा के स्वभाव में नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..हा..!

पंच परमेष्ठी के प्रति राग (आवे), वह अस्थिरता का (राग) है। उसमें निश्चय से राग करनेयोग्य है, ऐसा सम्यग्दृष्टि नहीं मानता, परन्तु थोड़ा राग है तो उससे प्रतिकूल थोड़ा द्वेष भी है। कुदेव-कुगुरु पर थोड़ा द्वेष है परन्तु वह राग और द्वेष ज्ञानी को ज्ञेयरूप है। समझ में आया? पंच परमेष्ठी, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति का प्रेम सम्यग्दृष्टि को उनके प्रति का प्रेम है तो उनसे विरुद्ध कुदेव-कुगुरु पर थोड़ा द्वेष का अंश है। वह राग और द्वेष, ज्ञाता का ज्ञेय है। अपना नहीं मानता और अपने से हुए हैं और वे करनेयोग्य हैं, ऐसा नहीं मानता। ओहो..हो..! समकित में क्या बाधा आवे?

मुमुक्षु : देव को मानना वह....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है कौन? अपना मानना, अपना स्वरूप मानना वही (मिथ्या) मान्यता है। परस्वरूप का राग आता है, व्यवहार समकित है परन्तु वह ज्ञान का ज्ञेय है। वह राग है, उससे मुझे लाभ है और राग किया तो मैंने ठीक किया है, (ऐसा माननेवाला) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? इसके लिए तो यह इष्टोपदेश (कहलाता है)।

मुमुक्षु : कोई धर्म सच्चा होगा और यह मिथ्या, यह तो राग-द्वेष हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अस्थिरता का विकल्प आता है, वह दूसरी बात है। अन्दर में नहीं है। ज्ञातारूप से जानते हैं। सच्चा या मिथ्या, वह ज्ञातारूप से जानते हैं। समझ में आया? परन्तु जब तक अस्थिरता है, तब तक शुभराग आता है और थोड़ा द्वेष का अंश भी आता है परन्तु दोनों को अपने स्वरूप में एकत्व नहीं करता। अज्ञानी तो उनमें ही पड़ा है। राग किया, यह मैंने ठीक किया तो द्वेष हुए बिना रहेगा नहीं, वह भी मैं ठीक करता हूँ, (ऐसा माने बिना रहेगा नहीं)।

मुमुक्षु : खाता अलग करना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। खाता अलग किये बिना तेरा छुटकारा नहीं होगा, ऐसा कहते

हैं। आहा..हा..! समझ में आया? हमारे एक नारणभाई थे न? वे नारणभाई जब लोंच करते थे, (तब) कहा, नारणभाई कैसा लगता है? (उन्होंने कहा), 'जितना रोटी खाते हुए राग (होता है), उतना अभी द्वेष होता है।' लाठी में (बात हुई थी)। लाठी में एक ही चातुर्मास किया था न? ८६ में, वहाँ कहा था 'इसमें कैसा लगता है?' 'रोटी, दाल, भात के समय जितना राग होता है, उतने प्रमाण में यहाँ द्वेष होता है।' तर्कबाज बहुत थे। समझे न? जरा सा फेरफार हो गया था। तर्कबाज बहुत थे, बहुत तर्कबाज। थोड़े-थोड़े में तर्क करे तो ऐसा तर्क करे न... समझ में आया? आहा..हा..! समझ में आया? लाठी में वह धर्मशाला है न? वहाँ व्याख्यान देने जाते थे, कमरे पर। बगल में धर्मशाला नहीं, बाहर दरवाजे के पास, वहाँ व्याख्यान वाँचने जाते थे न? पर्यूषण में बहुत लोग होते हैं न? (पूछा) कैसे हैं? (तो कहा) दाल, भात,, सब्जी खाते हुए जितनी उस ओर की राग की वृत्ति खिंचती थी, उतनी ही यहाँ खींचने में द्वेष की वृत्ति आती है। समझ में आया?

यहाँ दूसरे प्रकार से कहते हैं। यह आत्मा ज्ञाता सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध है, उसमें कोई भी चीज़ में राग करनेयोग्य है, ऐसी चीज़ आत्मा में नहीं है, तो कोई भी चीज़ द्वेष करनेयोग्य है, ऐसा भी आत्मा में नहीं है - एक बात; और सामने अनन्त चीज़ें हैं, उनमें दो भाग नहीं कि यह इष्ट है और यह अनिष्ट है। उसमें ऐसे दो भाग नहीं हैं। वे जगत के पदार्थ तो ज्ञेयरूप से हैं। मिथ्यादृष्टि जीव-अपने स्वरूप का खून करनेवाला, मैं ज्ञान हूँ— ऐसा नहीं मानकर, जगत की चीज़ ज्ञेयरूप से एकरूप जाननी चाहिए, (उसके बदले) उसके दो भाग करता है। यह अनुकूल ठीक है और प्रतिकूल, वह ठीक नहीं, ऐसे राग-द्वेष करता है, वे मिथ्यादृष्टि के राग-द्वेष कहे जाते हैं। सम्यग्दृष्टि को जरा राग-द्वेष होते हैं, वे चीज़ को ठीक-अठीक मानकर ज्ञेय के दो भाग करके राग-द्वेष नहीं होते। आहा..हा..! ऐ..! कान्तिभाई! यह क्या तुम्हारी टाईल्स की बात की? सुना नहीं? वह बाहर की धर्मशाला नहीं? कौन सी? यह भी खबर नहीं। वह व्याख्यान पढ़ने नहीं जाते थे चातुर्मास में? (संवत्) १९८५ में। उस दरवाजे के पास। १९८५। ३७ वर्ष हुए। समझ में आया? अरे!

यहाँ तो आचार्य जरा बहुत सूक्ष्म रीति से राग-द्वेष की व्याख्या करते हैं। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो! ज्ञानी को, धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को, लड़ाई का भाव भी होता है। सुनो! और छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में भोग की वृत्ति आती है। सुनो! उस वृत्ति

की वासना मुझे ठीक है, ऐसा नहीं। उस वृत्ति से एकत्व (तोड़कर) भिन्नपना किया है। मैं ज्ञानानन्दमय हूँ, उसमें एकत्व हुआ है। राग से भिन्नता की है। उस समय भी राग से पृथक् है, स्वभाव से एकत्व है। समझ में आया ? अज्ञानी उस राग के (काल में), छोटे-छोटे दया के राग के काल में भी 'मुझे यह रक्षा करनेयोग्य है, मुझे यह प्रेम करनेयोग्य है' ऐसा राग है। वह राग और ज्ञान एक मानकर परचीज़ में दो भाग करता है, वह मिथ्यादृष्टि का राग है। आहा..हा..! गुलाबभाई!

बहुत समझना पड़े ऐसा है, ऐसा कहते हैं। भाई! ऐसी चीज़ है। ऐई! देखो न! यह शक्ति-व्यक्ति कहा न ? लाऊँ, देखूँ क्या कहते हैं यह ? है न अन्दर में यह ? '**रागद्वेषयोः शक्तिव्यक्तिरूपतया युगपत् प्रवृत्तिज्ञापनार्थं द्वीयग्रहणं**' '**द्वयी**' शब्द पड़ा है न ? **रागद्वेषद्वयी** मूल पाठ में द्वयी (शब्द) पड़ा है न, **रागद्वेषद्वयी** यह उसका अर्थ करते हैं। अज्ञानी को राग-द्वेष एक साथ में हैं। ज्ञानी को एक साथ ज्ञातादृष्टा है। आहा..हा..! क्या अन्तर है, वह समझ में नहीं आता।

यह शक्ति है। है न ? स्पष्ट है न बात ? कहा, यह क्या कहते हैं ? नहीं तो विचार तो हुआ था कि पण्डितजी को पूछें कि उसमें क्या है ? वहाँ तो उसमें से स्पष्टीकरण आ गया। शक्ति-व्यक्ति क्या कहते हैं ? कहा। शक्ति-व्यक्ति यह कि आत्मा आनन्द और ज्ञानमूर्ति मैं हूँ, ऐसा भान है, वहाँ राग और द्वेष शक्ति-व्यक्तिरूप से है ही नहीं। समझ में आया ? वहाँ जरा राग-द्वेष थोड़ा होता है। भगवान के प्रति प्रेम, उतना ही कुदेवादि के प्रति द्वेष का अंश होता है (परन्तु) वे दो भाग नहीं करते। वे ज्ञेयरूप से, ज्ञानी राग को ज्ञेयरूप से जानते हैं। मैं ज्ञाता हूँ, वह ज्ञेय है। जैसे परचीज़ में दो भाग नहीं करते, इष्ट-अनिष्टपना नहीं करते; वैसे शुभ-अशुभ में इष्ट-अनिष्ट के भाग नहीं करते। वे जाननेयोग्य हैं, मैं जाननेवाला हूँ, इसका नाम ज्ञानधर्म को निश्चय करके ज्ञान का धर्म धारा। आहा..हा..! समझ में आया ? यह छोड़कर, थोड़ा राग (होवे कि) इस जीव की रक्षा करना ठीक है, वह राग मिथ्यादृष्टि का राग है, क्योंकि परपदार्थ की रक्षा और परपदार्थ का नाश आत्मा तीन काल में नहीं कर सकता।

मुमुक्षु : गौशाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : गौशाल कौन कर सकता है ? कौन करता है ? ऐ.. बसन्तलालजी! अज्ञानी का अभिमान है। आहा..हा..!

वस्तुस्थिति क्या है ? वस्तु का सत्व, सत् का सत्व कैसा है, यह समझे बिना दूसरे के सत्व को अपने में लगा देता है। वस्तु का सत् कैसा है ? भगवान आत्मा ज्ञानसत् है, ज्ञानसत्व स्वभाव है, आनन्दस्वभाव है, शान्तिस्वभाव है, जानन-देखना स्वभाव है, बस! यह सत् का सत्व है और पर का सत्व कैसा है कि वह है। वह अपने ज्ञान में जाननेयोग्य है, बस! इतनी बात है। इसके सिवाय अतिरेक करके उसमें दूसरा कुछ घुसाना कि यह ठीक है, मुझे प्रेम करनेयोग्य चीज़ है तो दूसरी चीज़ अप्रेम की होकर मिथ्यादृष्टि को अनन्त संसार का राग-द्वेष उसे उत्पन्न हुआ है। समझ में आया ? गजब भाई!

वैसे तो नौवें ग्रैवेयक जानेवाला दिगम्बर साधु अनन्त बार हो गया। क्या हुआ ? मिथ्यादृष्टि था। बारह व्रत धारण करके श्रावक भी अनन्त बार हुआ, परन्तु वह विकल्प / राग आया कि मैं ठीक करता हूँ, यह मेरा आचरण है, मेरा कर्तव्य है—ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। राग के दो भाग करता है। आहा..हा..! समझ में आया ? भारी कठिन बात!

मुमुक्षु : सब राजा हों, ऐसा लगता है। सब भगवान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब भगवान हैं। चैतन्यमूर्ति है, आत्मा बादशाह है। अन्दर चैतन्यशक्ति से भरपूर भण्डार आत्मा है। आनन्द का भण्डार, ज्ञान का भण्डार, ज्ञान की कला खिलानी हो, उतनी खिल सकती है। केवलज्ञान प्रगट कर सके, इतनी इसमें ताकत है। राग प्रगट करे, ऐसी इसमें ताकत है ? समझ में आया ? क्या इसमें-स्वभाव में अन्दर राग-द्वेष भरा है ?

मुमुक्षु : परपदार्थ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : परपदार्थ में राग है ? परपदार्थ राग कराता है ? यदि परपदार्थ राग कराता हो तो परपदार्थ तो त्रिकाल रहता है, अतः कभी रागरहित होकर आत्मा वीतराग हो ही नहीं सकेगा। परपदार्थ से राग होता हो तो परपदार्थ की अस्ति तो त्रिकाल है, तो जहाँ तक वह रहे, वहाँ तक राग जायेगा नहीं, परन्तु ऐसा है नहीं। परपदार्थ राग-द्वेष कराते नहीं हैं और आत्मा में राग-द्वेष है नहीं। अज्ञानमूढ़ का मिथ्यात्वभाव, पागलपन है, वह पर में प्रेम और द्वेष करता है, वह पागल मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : पागलपना लक्ष्य में न आता हो तो क्या करें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल भटका करे। क्या करे ? बताये तो भी न समझे तो भटके चार गति में। तो वह भटके, यह तो पहले कहा।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप पंच परावर्तनरूप संसार जिसे दुःख का कारण.. देखो ! **और दुस्तर होने से..** दो बातें। एक, शुभाशुभभाव दुःख का कारण और निमित्त, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, वह भी दुःख का निमित्त है। है न ? **और दुस्तर..** आहा..हा.. ! समुद्र में भटकते हुए अनन्त-अनन्त काल हुआ। अनादि काल है न ? यह आत्मा नया है ? अभी तो कितनों को यह खबर नहीं की आत्मा यहाँ से आया है और कहाँ से आया है, यह खबर नहीं। कल पाँच-सात लोग देखने आये थे। मैंने कहा, यह शरीर की स्थिति है, हों ! आत्मा भिन्न है, हों ! आत्मा की उम्र नहीं होती। (तो पूछा) यह क्या ? आत्मा की उम्र नहीं होती, कहा। यहाँ ७५ वर्ष देखते थे। यहाँ सुनते थे। कहा, यह शरीर की बातें चलती है, आत्मा को उमर-बूमर होती नहीं। आत्मा तो सच्चिदानन्द अनादि-अनन्त है। हैं ? दूसरे भव में से यहाँ आया है और यहाँ से कहीं जायेगा। ऐसे अनादि से भटका करता है। हाय.. हाय.. ! यह और क्या ? फिर उस राजुल का दृष्टान्त दिया। हैं ? ऐसा है ? लो ! ऐसा मनुष्यपना पाया और जवान व्यक्ति पढ़े-गुने हों, उन्हें इतना भी भान नहीं होता कि यह आत्मा कहीं था और वहाँ से आया है। कहीं था, वहाँ से आया है। शरीर वहाँ पड़ा रहा, यह शरीर दूसरा है। यह पड़ा रहेगा और यहाँ से चला जाएगा। ऐसे शरीर तो अनन्त आये। द्रव्य शरीर क्यों आये ? इन राग-द्वेष के कारण से। राग-द्वेष कैसे ? मिथ्यात्व के राग-द्वेष के कारण से। वह यहाँ कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? हमारा देश, देश के लिए मरना, हमारा परिवार, उसके लिए मरना, हमारा शरीर, उसकी बराबर रक्षा करना, मेरी स्त्री...

मुमुक्षु : शरीर को उपयोग में तो लेना पड़े न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में उपयोग ले। तुम्हारे कहते थे। वे ढेवरभाई एक बार यहाँ पूछते थे, 'इस शरीर का सदुपयोग कैसे करना ?' कहा, 'शरीर का सदुपयोग होता होगा ?' ऐसे के ऐसे सब। (संवत्) २०१५ के वर्ष में ढेवरभाई आये थे। नेता सब समझने जैसे हैं। इस जड़ शरीर का सदुपयोग होता होगा, इस जड़ का, मिट्टी का ? आत्मा भिन्न चीज़,

यह भिन्न चीज़। इस भिन्न चीज़ में रहना, न रहना उसके आधीन है। उसका तू उपयोग कर सकता है ? मैं शरीर का सदुपयोग करूँ, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि के राग की तीव्र पाप की (दृष्टि) है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : लोक के भले के लिए....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक का कौन भला कर सकता है ? धूल में। समझ में आया ? भला का अर्थ क्या ? दुनिया अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर मिथ्यात्व के राग से दुःखी होती है, वही मिथ्यात्व और भ्रान्ति छोड़कर स्वयं से सुखी हो सकती है। क्या दूसरे ने उसका दोष किया है ? दूसरे ने उसका दोष किया है कि दूसरा उसका दुःख मिटा दे और सुखी कर दे ? संयोग से क्या सुख है ? अनुकूलता मिली, वह सुख है ? यह बात तो करते हैं। अनुकूलता मिलने में सुख मानना, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानता है। अन्दर में अपने स्वरूप को भूलकर मिथ्या भ्रमणा और राग-द्वेष करके दुःखी होता है। वह करनेवाला अपने मिथ्याभ्रम और राग-द्वेष के कारण दुःखी है, तो जिसने किये, वह राग-द्वेष छोड़कर सुखी हो सकता है। दूसरा क्या सुखी कर सकता है ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : सबके ऊपर से हाथ उठा लेना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : उठा (भिन्न) पड़ा ही है, यह व्यर्थ का मानता है। करता है क्या ? मोहनभाई ! परन्तु भारी अभिमानी ! यह सब हमारा.. हमारा.. हमारा.. सबका कर दें, देश का कर दें, ऐसा कर दें और भाई ! शुरुआत से तो घर से करना, फिर चतुर का पुत्र ऐसे धीरे-धीरे बोले। पहले यहाँ से शुरु करना, फिर जाति में लेना, फिर परिवार में, फिर जाति में, फिर देश में, फिर अमुक में... ओहो..हो..! मानो भाषण.. भारी परन्तु भाषण करनेवाले, हों ! ऊँट की तरह भखनार ! कौन करे ? सुन न !

यहाँ तो आचार्य महाराज कहते हैं, भगवान ! तेरी पूँजी में राग-द्वेष बिल्कुल नहीं है, और दूसरी चीज़ तुझे राग-द्वेष करावे, ऐसी दूसरी चीज़ में ताकत नहीं है। तू तेरे स्वभाव के ज्ञातापने को छोड़कर अज्ञान के कारण लम्बी डोरी चलाता है। यह ठीक है, यह अठीक है, ऐसा अनन्त काल से तूने राग-द्वेष का मन्थन किया है। समझ में आया ? यह हमारे अंगी हैं, तो इसका अर्थ हुआ कि इसके अतिरिक्त तेरे द्वेषी, वे शत्रु हैं। अंगी और शत्रु दुनिया में कोई है ही नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं **दुःख का कारण और दुस्तर होने से..** दुस्तर। ओहो..हो..! इन राग-द्वेष से जो भटकना होता है, उसकी दृष्टि में विकार ही मालूम पड़ता है। उसे छोड़ना महा दुष्कर है तो वह अनादि काल से राग-द्वेष में डूब जाता है। अपने ज्ञातादृष्टा स्वभाव में डूबना चाहिए, अन्दर ज्ञानानन्द में आना चाहिए, उसे छोड़कर राग-द्वेष में ठीक है और अठीक है, इसमें डूब गया है। दुस्तक समुद्र हो गया। उससे तिरना दुस्तर हो गया। दुस्तर कहा है न? दुस्तर अर्थात् तिरना मुश्किल हो गया। दुस्तर। दु-सनो। हो गया। दुःख से तरना महामुश्किल हो गया।

समुद्र के समान कहा गया है, उसमें अज्ञान से.. यहाँ तो अज्ञान की ही बात की है। **शरीरादिकों में..** देखो! शरीर में, वाणी में। ऐसी वाणी हो तो दुनिया को लाभ हो। भाषण करना बहुत आवे, लोगों को ऐसे ओहो..हो.. (हो जाए)। ऐसे लोग देखे तो आहा..हा.. (होवे)। ऐसा मुझे होवे न! लाखों लोग बैठे हों, कैसी भाषा करे! कैसा ऐसे सब आकर्षण होकर बैठे! क्या है? भाषा तो जड़ है। समझ में आया? कहते हैं, **अज्ञान से-शरीरादिकों में..** और वाणी में। आदि में है न? आदि। वाणी में भी प्रीति करते हैं कि ऐसी वाणी होवे तो ठीक। समझ में आया? उससे दूसरी वाणी के प्रति द्वेष हुए बिना रहेगा नहीं और यह राग-द्वेष ही अज्ञान का मूल है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! ऐसी बात है। साधारण राग-द्वेष की बात है? लो, यह मैंने छोड़ दिया, इसलिए राग-द्वेष छूट गये। धूल में छूटे नहीं। राग-द्वेष ऐसे छूटते हैं?

आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव में विकल्प का उत्थान है ही नहीं। परपदार्थ का तो त्रिकाल अभाव है परन्तु उसमें शुभाशुभ परिणाम उठते हैं, उनका भी अभाव है। ऐसे ज्ञान में एकाग्र होकर विकल्प को पृथक् करना, वही आत्मा के हित का तरण उपाय है। दूसरा कोई तरण उपाय नहीं है। समझ में आया? आहा..! यह दुस्तर आया न? तिरना कठिन है, ऐसा कहा न? समझ में आया? आचार्य बहुत गूढ़ गम्भीर बात करते हैं।

अज्ञान से-शरीरादिकों में.. शरीर ठीक होवे तो बहुत परोपकार किया जा सके, सेवा कर सकूँ। निरोग शरीर होवे तो कर सकूँ। मूढ़ है। शरीर तो जड़ है। उससे किसकी सेवा कर सकेगा? शरीर की क्रिया होती है, वह जड़ की पर्याय है। वह पर्याय तेरा कर्तव्य है? समझ में आया? तेरा कर्तव्य हो तो वे दोनों चीज़ें एक हो जाएँ। शरीर की पर्याय और

आत्मा एक हो जाए। ऐसे एक है नहीं। अज्ञान से शरीर आदि में, वाणी आदि में, मन आदि में, यहाँ एक मन भी है, (उसमें) **आत्मभ्रांति से..** आत्मभ्रान्ति अर्थात् उससे मुझे लाभ होगा, ऐसा माना (वही उसमें आत्मा माना।)

जिससे लाभ मानता है, उसे एक माने बिना लाभ नहीं मान सकता। गुलाबभाई! सिद्धान्त समझे? सिद्धान्त बराबर (समझे)? शरीर से मुझे धर्म का लाभ होगा, (ऐसा जिसने माना उसे) शरीर और आत्मा एक माने बिना ऐसी मान्यता हो सकती नहीं। समझ में आया? हमारे बहुत भगत हैं, हम तो दुनिया के पास लाखों, करोड़ों, अरबों रुपये निकला सकते हैं और दया, दान कर सकते हैं। हमारे पास पैसे नहीं और पैसेवाले से हम पैसा निकालवा लेते हैं। मूढ़ है, ऐसा कहाँ से लाया?

मुमुक्षु : व्याख्यान करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्यान कौन करता है? भाषा जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय से मैं दूसरे को लाभ करा सकता हूँ, ऐसी बात है? तो जड़ को अपना माने बिना जड़ से पर को लाभ होता है और इससे मुझे लाभ होता है, वह जड़ को अपना माने बिना ऐसी दृष्टि नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....अमल करने के लिए..

पूज्य गुरुदेवश्री : अमल भी कब? पहले समझे, तब अमल कहलाये न? अमल का अर्थ क्या? जो मल अर्थात् मिथ्याभ्रान्ति करता है, उसे समझना, उसका नाम अमल कहते हैं। मलरहित अमल। सम्यक्श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान करना, वह अमल। मिथ्याश्रद्धा आदि करना, वह अमल में रखने की योग्यता नहीं है।

मुमुक्षु : आचरण....

पूज्य गुरुदेवश्री : आचरण यह है, दूसरा कौन सा आचरण है? क्या आचरण लटकता है? आचरण आत्मा में होता है या आत्मा का आचरण जड़ में होता है? मिट्टी में होता है?

अज्ञान से-शरीरादिकों में आत्मभ्रांति से-अतिदीर्घ काल तक.. अनन्त संसार है। अनन्त काल से भटकता है न? एकेन्द्रिय से लेकर, निगोद से लेकर, आलू आदि में

जीव हैं, वे भी अज्ञान से, राग-द्वेष से अपना मानकर, अव्यक्तरूप से पर को अपना ही मानता है। समझ में आया? एक श्वास में अठारह भव करता है। ओहो..हो..! निगोद.. आलू आदि सब कन्दमूल है। अनन्त जीव हैं, एक श्वास में अठारह भव करते हैं। यह राग—शरीर के प्रति प्रेम, एकत्वबुद्धि है। राग के प्रति एकत्वबुद्धि है, इस कारण से वहाँ भव करते हैं। ऐसे साधु हुआ और त्यागी होकर भी शुभराग से मुझे लाभ होगा, (ऐसा मानकर) राग से एकत्वबुद्धि हुई, वह मिथ्यात्वभाव है। वह मिथ्यात्वभाव परिभ्रमण का मूल है। समझ में आया?

अतिदीर्घ काल तक घूमता (चक्कर काटता) रहता है। लो! **इष्ट वस्तु में प्रीति होने को राग..** देखो! अपने अतिरिक्त दूसरी चीज़ को इष्ट मानना, वह उस पर मूढ़ राग करता है। **और अनिष्ट वस्तु में अप्रीति होने को द्वेष कहते हैं।** शरीर में रोग हुआ (तो) उं...हुं.. (होता है) निरोग हुआ तो ठीक है। क्या ठीक-अठीक? वह तो जड़ की पर्याय है, जड़ की पर्याय में तुझे ठीक-अठीकपना कहाँ से आया? समझ में आया? सेवा करनेवाले हों तो परिणाम अच्छे रहें, शरीर में रोग हो (और) वैयावृत्य करनेवाले, सम्हाल करनेवाले ठीक हों, सम्हाल करनेवाले (तो ठीक रहे)। शरीर में बहुत रोग हो तो सम्हाल करनेवाले हों, ऐसे हवा-पानीवाला मकान हो तो ज़रा परिणाम अच्छे रहें। मूढ़ है, कहते हैं, मूढ़! उस पर के कारण तेरे परिणाम होते हैं? मिथ्यादृष्टि है, तूने आत्मा का खून किया है। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : निश्चिन्तता से ऐसे बैठे-बैठे धर्म किया जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी धर्म (नहीं है) पैसे के कारण धर्म होता होगा? ऐई! छगनभाई! ये खीमचन्दभाई पैसेवाले हैं, तो निश्चिन्तता से बैठे हैं, ऐसा ये कहते हैं। यहाँ साधारण (स्थितिवाले) भी बहुत हैं। नहीं? महीने में पच्चीस रुपये मिले नहीं, ऐसी महिलाएँ भी यहाँ कितनी ही हैं। उसमें क्या? ऐई!

आचार्य भी गजब बात करते हैं, हों! इष्टोपदेश! इष्ट उपदेश। बापू! भाई! तेरा आत्मा परवस्तु में कुछ भाग करके, छोटी में छोटी चीज़ में भी वह मुझे प्रेम करनेयोग्य है अथवा रक्षा करनेयोग्य है तो दूसरी अरक्षा में द्वेष करनेयोग्य है, ऐसा हो गया। उस भाव को मिथ्यात्वभाव कहते हैं। इसका नाम इष्ट उपदेश है। समझ में आया? और उसमें लाभ

मनवावे, वह अनिष्ट उपदेश, दुष्ट उपदेश है। वह उपदेश ही दुष्ट है। समझ में आया? आाह..हा..! कोई भी प्राणी भाव द्वारा दूसरे को कहे कि भाई! हमारे भले एकाध-दो भव करना पड़े, परन्तु दुनिया को लाभ होता हो तो भले हमारे भव करना पड़े। दुनिया को इतना मीठा लगे... आहा..हा..! यहाँ कहते हैं कि मूढ़ है। तू मिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी प्राणी है।

मुमुक्षु : बेचारे दुनिया के भले के लिए भव करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भव क्या? भव और भव का राग करना, वह ठीक है, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। उससे पर में निमित्त होना, यह तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? बाहर में कैसा मीठा लगे! ओहो..! भाई! हमारे दो भव करने पड़ें तो भी दिक्कत नहीं परन्तु दुनिया को अनुकूलता करने के लिए हमारा जन्म (भले होओ)। लाखों लोग ऐसे आहा..! (करे)। शास्त्रकार कहते हैं कि वह अपना / आत्मा का खून करता है। समझ में आया? देखो, उस वस्तु में प्रीति की। अनिष्ट वस्तु में अप्रीति की। समझ में आया? आहा..हा..! क्या तुझसे उसकी पर्याय सुधर जायेगा? उसकी योग्यता से सुधरता है। तुझे ऐसा अभिमान कहाँ से आया? और भव करने का भाव तो राग करने का भाव हुआ। राग का फल भव करने का भाव हुआ। यह तो द्वेष हुआ। समझ में आया? इससे विरुद्ध में द्वेष हुआ और करने में राग हुआ।

उनकी शक्ति और व्यक्तिरूप से हमेशा प्रवृत्ति होती रहती है,... है? राग के समय राग की व्यक्तता और द्वेष की शक्ति। द्वेष के समय व्यक्तता द्वेष की और राग की शक्ति। समझ में आया? यह क्या कहते हैं? **शक्ति और व्यक्तिरूप से हमेशा प्रवृत्ति होती रहती है,..** परिणाम में। क्या (प्रवृत्ति होती है)? आत्मा का ज्ञान-दर्शन स्वभाव है, उसे छोड़कर पर के हित के लिए या पर को प्रेम करना, राग ठीक है तो उस मिथ्यादृष्टि के राग में व्यक्तता राग की है; शक्तिरूप से द्वेष पड़ा ही है और हमारा-धर्म का विरोधी है, उसे मारना ठीक है। धर्म के विरोधी को मार डालना - ऐसा भाव द्वेष है। तो द्वेष में दूसरे के प्रति के प्रेम की शक्ति पड़ी ही है। कोई दुश्मन है ही नहीं। समझ में आया? धर्म विध्वंसियों को तो छेद डालना...। अरे! भगवान! धर्म विध्वंसी कहना किसे? वे तो उसके परिणाम है। मिथ्यात्व हो तो धर्म द्वेषी उसके परिणाम में है। समझ में आया? आहा!

मुमुक्षु : वह तो छेदाया ही गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह छेदाया गया है। किसे छेदना है अब तुझे? क्या करना है तुझे?

शक्ति और व्यक्तिरूप से हमेशा प्रवृत्ति होती रहती है,.. देखो! कहते हैं कि जैसे ज्ञानी को हमेशा ज्ञातापना कायम रहता है। सम्यग्दृष्टि को तो हमेशा ज्ञातापना ही रहता है। राग आवे तो भी ज्ञाता, द्वेष आवे तो भी ज्ञाता। ठीक-अठीक है ही नहीं। अज्ञानी को हमेशा राग-द्वेष ठीक है - ऐसा अज्ञानपना उत्पन्न होता है। हमेशा राग-द्वेष की प्रवृत्ति को ही अपनी मानता है। समझ में आया?

इसलिए आचार्यों ने इन दोनों की जोड़ी बतलाई है। ऐई! मोहनभाई! दोनों की जोड़ी। कहाँ किसने जोड़ी थी, वह तोड़े? व्यर्थ में राग से जोड़ी थी, राग किया तो टूट गयी। उसमें क्या हुआ? जोड़े वह तोड़े और तोड़े वह जोड़े। पर के साथ राग की एकता जोड़े, वह राग की एकता तोड़े। दूसरा कौन तोड़ सके? आहा..हा..! समझ में आया? **दोनों की जोड़ी बतलाई है। बाकी के दोष इस जोड़ी में ही शामिल हैं,..** देखो! क्या कहते हैं? जिसने ज्ञेय के ऐसे दो भाग कर दिये और अपने ज्ञान में भी खण्ड कर दिये कि राग-द्वेष ठीक है, करनेयोग्य है - तो उसमें सब दोष आ जाते हैं। मिथ्यात्व का, अनन्तानुबन्धी का, हास्य का, भोग का, कर्ता का, भोक्ता का - सब दोष उसमें समा जाते हैं। **जैसा कि कहा गया है..** लो! दृष्टान्त देते हैं। यह आयेगा। यह ज्ञानार्णव का है, हों! ज्ञानार्णव का श्लोक है न! यह श्लोक आयेगा। शुभचन्द्राचार्य का ज्ञानार्णव एक शास्त्र है न? उसका श्लोक है। वह आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)